गायत्री और यज्ञ का सम्बन्ध



— श्री राम शर्मा आचार्य

विश्वमाता

गायत्री और यज्ञ का सम्बन्ध

यज्ञ भारतीय धर्म का मूल है। आत्म-साक्षात्कार, स्वर्ग-सुख, बन्धन-मुक्ति, मनः-शुद्धि, पाप-प्रायश्चित, आत्म-बल वृद्धि और ऋद्धि-सिद्धियों के केन्द्र भी यज्ञ ही थे। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवम् भौतिक शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं। वेद मन्त्रों के साथ-साथ शास्त्रोक्त हवियों के द्वारा जो विधिवत् हवन किया जाता है, उससे एक दिव्य वातावरण की उत्पत्ति होती है। उस वातावरण में बैठने मात्र से रोगी मनुष्य निरोग हो सकते हैं। चरक ऋषि ने लिखा है कि "आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को विधिवत् हवन करना चाहिये।" बुद्धि शुद्ध करने की यज्ञ में अपूर्व शक्ति है। जिनके मस्तिष्क दुर्बल हैं या मलीन हैं, वे यदि यज्ञ करें तो उनकी अनेक मानसिक दुर्बलतायें शीघ्र दूर हो सकती हैं। यज्ञ से प्रसन्न हुए देवता मनुष्य को धन सौभाग्य, वैभव तथा सुख-साधन प्रदान करते हैं। यज्ञ करने वाला कभी दरिद्र नहीं रह सकता। यज्ञ करने वाले स्त्री-पुरुषों की सन्तान बलवान, बुद्धिमान, सुन्दर और दीर्घजीवी होती है। गीता आदि शास्त्रों में यज्ञ को आवश्यक धर्मकृत्य बताया गया है और कहा गया है कि यज्ञ न करने वाले को यह लोक और परलोक कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यजुर्वेद में कहा गया है कि जो यज्ञ को त्यागता है उसे परमात्मा त्याग देता है यज्ञ के द्वारा ही साधारण मनुष्य देव-योनि प्राप्त करते हैं और स्वर्ग के अधिकारी बनते हैं। यज्ञ को सर्व कामना पूर्ण करने वाली कामधेनु और स्वर्ग की सीढ़ी कहा गया है। याज्ञिकों की आत्मा में ईश्वरीय प्रकाश उत्पन्न होता है और इससे स्वल्प प्रयत्न द्वारा ही सद्गति का द्वार खुल जाता है। आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर प्राप्ति का तो यज्ञ अमोघ साधन है। यज्ञ में अमृतमयी वर्षा होती है, उससे अन्न, पशु, वनस्पति, दूध, धातु, खनिज पदार्थ आदि की प्रचुर मात्रा में उत्पत्ति होती है और

प्राणियों का पालन होता है। यज्ञ से आकाश में अदृश्य रूप से ऐसा सद्भावनापूर्ण सूक्ष्म वातावरण पैदा होता है, जिससे संसार में फैले हुए अनेक प्रकार के रोग शोक, भय, क्लेश, कलह द्वेष, अन्याय, अत्याचार नष्ट हो सकते हैं और सब लोग प्रेम और सुख-शान्तिपूर्वक रह सकते हैं।

प्राचीन काल में ऋषियों ने यज्ञ के इन लाभों को भली प्रकार समझा था इसीलिये वे इसे लोक-कल्याण का अतीव आवश्यक कार्य समझ कर अपने जीवन का एक तिहाई समय यज्ञों के आयोजन में ही लगाते थे। स्वयं यज्ञ करना और दूसरों से यज्ञ कराना उनका प्रधान कर्म था। जब घर-घर में यज्ञ की प्रतिष्ठा थी तब यह भारत भूमि स्वर्ण सम्पदाओं की स्वामिनी थी। आज यज्ञ को त्यागने से ही हमारी दुर्गति हो रही है।

यज्ञ भारतीय संस्कृति का आदि प्रतीक है। हमारे धर्म में जितनी महत्ता यज्ञ को दी गई है उतनी और किसी को नहीं दी गई। हमारा कोई शुभ-अशुभ धर्म कृत्य-यज्ञ के बिना पूर्ण नहीं होता है। जन्म से लेकर अन्त्येष्टि तक १६ संस्कार होते हैं इनमें अग्निहोत्र आवश्यक है। जब बालक का जन्म होता है तो उसकी रक्षार्थ सूतक-निवृत्ति तक घरों में अखण्ड-अग्नि स्थापित रखी जाती है। नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों में भी हवन अवश्य होता है। अन्त में जब शरीर छूटता है, तो उसे अग्नि को ही सौंपते हैं। अब लोग मृत्यु के समय चिता जलाकर यों ही लाश को भस्म कर देते हैं पर शास्त्रों में देखा जाय तो वह भी एक संस्कार है। इसमें वेद मन्त्रों से विधिपूर्वक आहुतियाँ चढ़ाई जाती है और शरीर को यज्ञ भगवान के अर्पण किया जाता है।

प्रत्येक कथा, कीर्तन, व्रत, उपवास, त्यौहार, उत्सव उद्यापन में हवन को आवश्यक माना जाता है। अब लोग इसका महत्व एवं विधान भूल गये हैं और केवल चिन्ह पूजा करके काम चला लेते हैं। घरों में स्त्रियाँ किसी रूप में यज्ञ की चिन्ह-पूजा करती हैं। वे त्यौहारों या पर्वों पर "अग्नि को जिमाने" या 'अग्यारी' करने का कृत्य किसी न किसी रूप में करती रहती हैं। थोड़ी सी अग्नि को लेकर उस पर घी डालकर प्रज्वलित करना और उस पर

पकवान के छोटे-छोटे ग्रास चढ़ाना और फिर जल से उस अग्नि की परिक्रमा कर देना—यह विधान हम घर में प्रत्येक पर्व एवं त्यौहार पर होते देख सकते हैं। पितरों का श्राद्ध जिस दिन होगा, उस दिन ब्राह्मण भोजन से भी पूर्व इस प्रकार अग्नि को भोजन अवश्य कराया जायगा क्योंकि यह स्थिर मान्यता है कि अग्नि के मुख में दी हुई आहुति देवताओं एवं पितरों को अवश्य पहुँचती है।

विशेष अवसर पर तो हवन करना ही पड़ता है। नित्य की चूल्हा, चक्की, बुहारी आदि से होने वाली जीव हिंसा एवं पातकों के निवारणार्थ नित्य पंच यज्ञ करने का विधान है। उन पाँचों में बलिवैश्व भी है बलिवैश्व अग्नि में आहुति देने से होता है। इस प्रकार शास्त्रों की आज्ञानुसार तो नित्य हवन करना भी हमारे लिये आवश्यक है, त्यौहारों में भी प्रत्येक त्यौहार पर अग्निहोत्र आवश्यक है। होली तो यज्ञ का ही त्यौहार है। आजकल लोग लकड़ी, उपले जलाकर होली मनाते हैं। शास्त्रों में देखा जाय तो यह यज्ञ है। लोग यज्ञ की आवश्यकता और विधि को भूल गये, पर केवल ईंधन जलाकर उस प्राचीन परम्परा की किसी प्रकार पूर्ति कर देते हैं। इसी प्रकार श्रावणी दशहरा, दीपावली के त्यौहारों पर किसी न किसी रूप में हवन अवश्य होता है। नवरात्रियों में स्त्रियाँ देवी पूजा करती हैं तो अग्नि मुख में देवी के निमित्त घी, लौंग, जायफल आदि अवश्य चढ़ाती हैं। सत्यनारायण-व्रत-कथा, रामायण परायण, गीता पाठ, भागवत सप्ताह आदि कोई भी शुभ-कर्म क्यों न हो, हवन इसमें अवश्य रहेगा।

साधनाओं में भी हवन अनिवार्य है। जितने भी पाठ, पुरश्चरण जप साधन किये जाते हैं, वे चाहे वेदोक्त हों चाहे तान्त्रिक, हवन उनमें किसी न किसी रूप में अवश्य करना पड़ेगा। गायत्री उपासना में भी हवन आवश्यक है अनुष्ठान या पुरश्चरण में जप से दसवाँ भाग हवन करने का विधान है। परिस्थितिवश दसवाँ भाग आहुतियाँ न दी जा सकें तो शतांश (सौवाँ भाग) आवश्यक है ही। गायत्री को माता और यज्ञ को पिता माना गया है। इन्हीं दोनों के संयोग से मनुष्य का आध्यात्मिक जन्म होता है, जिसे 'द्विजत्व' कहते हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को द्विज कहते हैं। द्विज का अर्थ है दूसरा जन्म। जैसे अपने शरीर को जन्म देने वाले माता-पिता की सेवा-पूजा करना मनुष्य का नित्य-कर्म है उसी प्रकार गायत्री माता और यज्ञ पिता की पूजा भी प्रत्येक द्विज का आवश्यक धर्म कर्त्तव्य है।

धर्म-ग्रन्थों में पग-पग पर यज्ञ की महिमा का गान है वेद में यज्ञ का विषय प्रधान है, क्योंकि यज्ञ एक ऐसा विज्ञानमय विधान है, जिससे मनुष्य का भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से कल्याणकारक उत्कर्ष होता है। भगवान् यज्ञ से प्रसन्न होते हैं। कहा गया है—

यो यज्ञे यज्ञ परमैरिज्यते तज्ञ संज्ञितः।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥

"जो यज्ञ द्वारा पूजे जाते हैं, यज्ञमय हैं, यज्ञरूप हैं उन यज्ञरूप विष्णु भगवान् को नमस्कार है।"

यज्ञ मनुष्य की अनेक कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा स्वर्ग एवं मुक्ति प्रदान करने वाला है। यज्ञ को छोड़ने वालों की शास्त्रों में बहुत निन्दा की गई है—

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि।

—यजु० २।२३

"सुख शान्ति चाहने वाला कोई व्यक्ति यज्ञ परित्याग नहीं करता। जो यज्ञ को छोड़ता है, उसे यज्ञरूप परमात्मा भी छोड़ देता है। सबकी उन्नति के लिए आहुतियाँ यज्ञ में छोड़ी जाती हैं, जो नहीं छोड़ता वह राक्षस हो जाता है।"

यज्ञेन पापैः बहुभिर्विमुक्तः प्राप्नोति लोकान् परमस्य विष्णोः।

—हारीत

"यज्ञ से अनेक पापों से छुटकारा मिलता है, तथा परमात्मा के लोक की भी प्राप्ति होती है।"

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम्।
भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभम् पतिम् ॥
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्य श्री कामः श्रियमाप्नुयात्।
यं य प्रार्थयेत् कामः सर्वं भवति पुष्कल ॥
निष्कामः कुरुते यज्ञ स परंब्रह्म गच्छति।

—मत्स्यपुराण ६३।११७

"यज्ञ से पुत्रार्थी को पुत्र लाभ, धनार्थी को धन लाभ, विवाहार्थी को सुन्दर भार्या, कुमारी को सुन्दर पति, श्री कामना वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है और निष्काम भाव से यज्ञानुष्ठान से परमात्मा की प्राप्ति होती है।"

न तस्य ग्रह पीड़ा स्यान्नच बन्धु धनक्षयः।
ग्रह यज्ञ व्रतं गेहे लिखितं यन्त्र तिष्ठति ॥
न तत्र पीड़ा पापानां न रोगो न च बन्धनम्।
अशेषा यज्ञ फलदमशेषाघौघ नाशनम् ॥

—कोटि होम पद्धति

"यज्ञ करने वाले को ग्रह पीड़ा, बन्धु नाश, धन क्षय, पाप, रोग, बन्धन आदि की पीड़ा नहीं सहनी पड़ती। यज्ञ का फल अनन्त है।"

देवा सन्तोषिता यज्ञोर्लोकान् सम्वर्धयन्त्युत।
उभयोर्लोकयो देव भूतियज्ञ प्रदृश्यते ॥
तस्माद्यद्देवत्वं याति पूर्वजः सहमोदते।
नास्ति यज्ञ समंदानं नास्ति यज्ञ समोविधिः।
सर्व धर्म समुद्देश्यो देवि यज्ञ समाहितः।

—महाभारत

"यज्ञों से सन्तुष्ट होकर देवता संसार का कल्याण करते हैं यज्ञ द्वारा लोक-परलोक का सुख प्राप्त हो सकता है। यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यज्ञ के समान कोई दान नहीं, यज्ञ के समान कोई विधिविधान नहीं, यज्ञ में ही सब धर्मों का उद्देश्य समाया हुआ है।"

असुराश्च सुराश्चैव पुण्यहेतोर्मख क्रियाम् ।
प्रयतन्ते महात्मानस्तस्मद्यज्ञ: परायणाम ।
यज्ञैरेव महात्मानो बभूवुरधिका सुरा: ।

—महाभारत

"असुर और सुर सभी पुण्य के मूल हेतु यज्ञ के लिये प्रयत्न करते हैं सत्पुरुषों को सदा यज्ञ परायण होना चाहिए । यज्ञों से ही बहुत से सत्पुरुष देवता बने हैं ।"

यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो मृत्योरन्तिक नीति एवं ।
तमाहरामि निऋते रूपस्था दस्पार्शमेनं शत शारदाय ।

—अथर्व ३।११।२

"यदि रोगी अपनी जीवन शक्ति को खो भी चुका हो, निराशाजनक स्थिति को पहुँच गया हो यदि मरण काल भी सामने आ पहुँचा हो, तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चंगुल से बचा लेता है और सौ वर्ष जीवित रहने के लिये पुनः बलवान बना देता है ।"

प्रयुक्तया यथा चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरोजित: ।
तां वेद विहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ।

—चरक चि० खण्ड ८।१२२

"तपेदिक सरीखे रोगों को प्राचीनकाल में यज्ञ के प्रयोग से नष्ट किया जाता था । रोग-मुक्ति इच्छा रखने वालों को चाहिए कि उस वेद विहित यज्ञ का आश्रय लें ।"

नास्त्य यज्ञस्य लोको वै ना यज्ञो विन्दते शुभम् ।
अयज्ञो न च पूतात्मा नश्यतिच्छिन्न पूर्णवत् ॥

—शंख

"यज्ञ न करने वाला मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों से वञ्चित रह जाता है । यज्ञ न करने वाले की आत्मा पवित्र नहीं होती और वह पेड़ से टूटे हुए पत्ते की तरह नष्ट हो जाता है ।"

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः । निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।

—यजु० ३।६३

अर्थ—हे यज्ञ ! तू निश्चय से कल्याणकारी है । स्वयम्भू परमेश्वर तेरा पिता है । तेरे लिये नमस्कार है तू हमारी रक्षा कर दीर्घ आयु, उत्तम अन्न, प्रजनन शक्ति, ऐश्वर्य-समृद्धि, श्रेष्ठ सन्तति एवं मंगलोन्मुखी बल पराक्रम के लिये हम श्रद्धा, विश्वास पूर्वक तेरा सेवन करते हैं ।

त्वामग्ने यजमानाऽअनुद्यून विश्वावसु दधिरे वार्याणि त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रज गोमंत मुशिजो विवव्रः ।

—यजुर्वेद १२।२८

अर्थ—हे देव अग्ने ! जो सदा यज्ञ करते रहते हैं, ऐसे सद्गृहस्थ सदा ही श्रेष्ठ सम्पत्तियों के स्वामी होते हैं, उन्हें इस यज्ञ के पुण्य प्रभाव से सदैव ज्ञानियों की सत्संगति के साथ ही धन की प्राप्ति होती रहती है ।

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ।

—यजुर्वेद १२।४४

अर्थ—हे ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले यज्ञाग्ने ! तुझे ये यज्ञकर्ता आदित्य यज्ञ, वसुयज्ञ एवं रुद्र यज्ञ के द्वारा बारम्बार प्रदीप्त करें । इन यज्ञों से तुम अपने तेजों की अभिवृद्धि करके यज्ञ कर्त्ताओं की कामना पूर्ण करो या पूर्ण करने में समर्थ होओ ।

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः ।
अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥

—यजुर्वेद ३।४०

अर्थ—यह यज्ञाग्नि वृष्टि कराने वाली, धन देने वाली तथा पुष्टि और शक्ति को बढ़ाने वाली है । पुरीष्य अग्नि ! तुम हमारे यश और बल और यश का विस्तार करो ।

त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक् पतंगाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः । यजु० ३।८

अर्थ—यह यज्ञ जो प्रतिदिन किया जाता है, वह अपनी प्रदीप्त ज्वालाओं से युक्त निरन्तर यज्ञकर्त्ता के अन्दर में विराजता रहता है, फिर ऐसी दशा में किसी अन्धकार, असुर अज्ञान को ठहरने को (वहाँ) अवकाश ही कैसे हो सकता है ? सच्चे यज्ञकर्त्ता एक दिन सम्पूर्ण अन्धकार और अज्ञान से मुक्त होकर दिव्य परमात्मा के चरणों में पहुँच जाते हैं।

शर्मास्यव धूतꣳरक्षोऽवधूताऽरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ —यजु० १।१४

अर्थ—हे यज्ञ तुम सुख कारक एवं आश्रय लेने योग्य हो, तुम से रोग विनिष्ट होते हैं तथा रोग के कीटाणु भी ध्वस्त होते हैं, तुम पृथ्वी के लिये त्वचा की भांति रक्षक हो। तुम हरीतमा पूरित वनस्पतियों से आच्छादित पर्वत के सदृश्य सुन्दर, सुहावने और हितकारी हो, तुम इस सुविस्तृत आकाश में जल से लबालब भरे वर्षाभिमुख बादलों के सदृश हो।

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि।

—यजुर्वेद १।२०

अर्थ—हे यज्ञ ! तुम देवों के धान्य (भोजन) हो, अतः इस हवि के द्वारा तुम उन्हें प्रसन्न करो, जिससे वे प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता को सुख और कल्याण प्रदान करें हम तुम्हें प्राण, उदान, व्यान आदि प्राणों में, आयु में तथा जीवन की व्यापक उन्नति करने के लिये धारण करते हैं, आपके अनुग्रह से यह सब वस्तुयें हम प्राप्त करेंगे।

आदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा, भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा। —यजुर्वेद १।२।२

अर्थ—हे यज्ञ ! तुम पृथ्वी को सींचने वाले हो, अर्थात् पृथ्वी निवासियों का सर्वांगीण अभ्युन्नति और कल्याण के अमृत से अभिसिंचन करते हो। हे देवों को सुखद स्थिति देने वाले एवं सभी भाँति रक्षा करने वाले यज्ञ ! हम तुम्हें सुविस्तृत और सूक्ष्मतर बनाना चाहते हैं।

गीता में यज्ञ की महिमा

सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो अस्त्विष्ट कामधुक ॥३।१०॥

अर्थ—कल्प के प्रारम्भ में प्रजापति ने यज्ञ सहित ही प्रजाओं की रचना की और कहा कि इसके (यज्ञ के) द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त करो और यह यज्ञ ही तुम लोगों की इष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥३।११

अर्थ—इस यज्ञ के द्वारा देवताओं की उन्नति (भावयत) करो और वे देवगण तुम लोगों की उन्नति करें। परस्पर उन्नति करते हुए श्रेय को प्राप्त होओगे।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः ॥
तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥३।१२

अर्थ—यज्ञभाविताः देवगण तुम लोगों को इष्ट भोग प्रदान करेंगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष इनके लिए बिना दिये ही भोग करता है, वह निश्चय ही चोर है।

अन्नाद्भवति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥३।१४

अर्थ—सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति पर्जन्य (वृष्टि) से होती है और वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ तो कर्म से ही उत्पन्न होने वाला है।

यज्ञशिष्टामृत भुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥४।३१

अर्थ—हे कुरुश्रेष्ठ ! यज्ञों के परिणाम रूप अमृत को भोगने वाले योगीजन सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं । यज्ञ से रहित जो पुरुष हैं, उन्हें तो यह (मनुष्य) लोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक की तो बात है क्या ?

अहंक्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥९।१६

अर्थ—(भगवान कहते हैं) श्रौतकर्म मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा मैं हूं, औषधि मैं हूं, मन्त्र मैं हूं आज्य (घृत) मैं हूं, अग्नि मैं हूं और हवन रूप क्रिया भी मैं ही हूं ।

यज्ञ दानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेवतत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥१८।५

अर्थ—यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं है, बरन् वह कर्म तो करने ही योग्य है—करना कर्तव्य ही है । यज्ञ, दान और तप, यह तीनों ही मनीषियों को पवित्र करने वाले हैं ।

उपनिषदों में यज्ञ-रहस्य का वर्णन

कठोपनिषद् में प्रथम अध्याय प्रथम बल्ली में यम और नचिकेता संवाद में यज्ञों को स्वर्ग-प्राप्ति का प्रथम साधन बताया गया है—

स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वँ श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥

नचिकेता ने यमराज से पूछा—

अर्थ—हे मृत्युदेव ! स्वर्ग की प्राप्ति के साधनरूप अग्नि को (यज्ञ प्रक्रिया को) भली-भांति जानते हैं । अतः आप उस अग्नि विद्या को मुझ श्रद्धालु को अच्छी तरह समझाकर कहिये, जिसे जानकर लोग स्वर्गलोक में रहकर अमृतत्व को प्राप्त होते हैं । यह मैं आपसे दूसरा वर मांगता हूं ॥१३॥

तब यमराज बोले—

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्त लोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥१४॥

अर्थ—हे नचिकेता ! स्वर्गदायिनी अग्नि विद्या (यज्ञ-विधि) को भली-भांति जानने वाला मैं तुम्हारे लिये उसे अच्छी तरह बतलाता हूं । उसे मुझसे भली-भांति जान लो । तुम इस विद्या को अनन्त लोक की प्राप्ति कराने वाली उसकी आधार स्वरूपा तथा बुद्धि रूपी गुहा में निहित (छिपी हुई) जानो ।

अग्नि विद्या यानी यज्ञ प्रकरण की सारी विधियाँ बताने के उपरान्त उस अग्नि-विद्या का फल यमराज बताते हैं ।

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू । ब्रह्मयज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥

अर्थ—इस अग्नि का शास्त्रोक्त रीति से तीन बार अनुष्ठान करने वाला पुरुष ऋक्, यजु, साम—तीनों वेदों के साथ सम्बन्ध जोड़ कर यज्ञ, दान, तप-रूप तीनों कर्मों को करता रहने वाला मनुष्य, जन्म-मृत्यु से तर जाता है । ब्रह्मा से उत्पन्न सृष्टि को जानने वाले स्तवनीय इस अग्नि को भली-भांति जान कर, इसका ठीक रीति से चयन करके उस अनन्त शान्ति को प्राप्त कर लेता है, जो मुझको प्राप्त है ॥१७॥

मुण्डकोपनिषद् द्वितीय खण्ड श्लोक ५

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥५॥

अर्थ—जो कोई भी अग्निहोत्री इन देदीप्यमान ज्वालाओं में ठीक समय पर अग्निहोत्र करता है, उस अग्निहोत्र को निश्चय ही अपने साथ लेकर ये आहुतियाँ, सूर्य की किरणें बनकर उसे स्वर्ग लोक में पहुँचा देती हैं, जहाँ देवताओं का एकमात्र पति निवास करता है ।

सरस्वती उपनिषद् १४ में—

"यज्ञं वष्टु धिया वसु" वचन है, जिसका तात्पर्य है-यज्ञ से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। आगे चलकर मन्त्र १७ है 'यज्ञं दधे सरस्वती' वचन है, जिससे प्रकट होता है कि यज्ञ से ही सरस्वती प्रसन्न होती है ।

रामायण में यज्ञ-चर्चा

रामायण में यज्ञ की महत्ता का विशद् रूप से वर्णन है। दशरथ जी के चारों पुत्रों का जन्म पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा होता है। भगवान राम अपने अवतार का श्रेय यज्ञ भगवान् को ही देते हैं। यज्ञ ही रामावतार का जनक है। पुत्र की इच्छा से प्रेरित होकर दशरथ जी ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और उन्हें अभीष्ट सत्परिणाम की प्राप्ति हुई, इसका वर्णन तुलसीकृत रामायण में इस प्रकार मिलता है—

एक बार भूपति मन माहीं। भई गलानि मोरे सुत नाहीं॥
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरण लागि करि विनय विशाला॥
शृङ्गी ऋषिहि वशिष्ठ बोलावा। पुत्र काम शुभ यज्ञ करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरु कर लीन्हें॥
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥
तबहि राज प्रिय नारि बुलाई। कौशल्यादि तहाँ चलि आई॥
अर्ध भाग कौशल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर लीन्हा॥
कैकई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौशल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥
एहि विधि गर्भ सहित सब रानी। भई हृदय हरषित सुख भारी॥

राक्षस पति रावण को भी यज्ञ-शक्ति पर पूरा विश्वास है इसे प्रकट करते हुए अपने अनुचरों को आदेश करता है कि जहाँ कहीं भी यज्ञ होते दिखाई दें उन्हें नष्ट कराने और विघ्न डालने का प्रयत्न करो।

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी विबुध बरूथा॥
तिन कर मरन एक विधि होई। कहहुँ बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम बाधा॥
क्षुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहि मिलिहहि आइ॥
तब मारिहउ छाड़िहउ, कि भली भाँति अपनाइ॥

विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ को नष्ट करने में असुर लोग भारी विघ्न कर रहे थे। उनसे रक्षा करने के लिये विश्वामित्र जी दशरथ के पास गये और

रामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी को माँगकर लाये। वाल्मीकि रामायण में इस प्रसङ्ग का वर्णन इस प्रकार है—

अहं नियममातिष्ठे सिद्धयर्थं पुरुषर्षभ।
तस्य विघ्नकरो द्वै तु राक्षसौ कामरूपिणौ ॥४॥
कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादपाक्रमे।
न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ॥७॥
तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते।
स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम्।
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि ॥८॥

—वाल्मीकि रामायण आदि काण्ड। १९ सर्ग

अर्थ—(विश्वामित्र दशरथ से कहते हैं कि हे राजन्!) आजकल मैं एक महा यज्ञ में दीक्षित हुआ हूँ। काम रूपी दो राक्षस उसकी समाप्ति होते-होते ही विघ्न कर देते हैं ॥४॥ जब हमारे यज्ञ की प्रतिष्ठा करके भ्रष्ट हो जाती है, तो हमें केवल श्रम ही होता है, इस कारण भग्नोत्साह होकर मैं यहाँ चला आया हूँ। हे पार्थिव! मैं उनको शाप दे सकता हूँ, परन्तु इस यज्ञ में क्रोध करना वर्जित है ॥७॥ कारण कि ऐसे यज्ञ साधन काल में किसी को शाप नहीं देना चाहिए। हे राजाओं में सिंह! आपसे यह प्रार्थना है कि सत्य पराक्रमी रामचन्द्र को, जो काकपक्ष धारण किये महावीर श्रेष्ठ हैं, उनको मेरे हाथ में सौंप दीजिये। यह मेरे दिव्य तेज के प्रभाव से मुझ से रक्षित किये जाकर, मेरे यज्ञ की रक्षा करने में समर्थ होंगे। ॥८॥

रावण को जब अपनी पराजय होती दीखती है तो वह चिन्तित और दुःखी होकर अन्तिम ब्रह्मास्त्र, यज्ञ का ही सहारा लेता है। अपने पुत्र मेघनाद को एक बड़ा तान्त्रिक यज्ञ करके ऐसी शक्ति प्राप्त करने के लिए आदेश करता है जिससे वह अजेय हो जाय और राम की सेना समेत परास्त कर सके। मेघनाद निकुम्भिला नामक स्थान में जाकर अपने पिता रावण के बताये हुए विधान के अनुसार तान्त्रिक होम करने लगा। वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन इस प्रकार है—

एतस्तुहुत मोत्कारं हुत भुक्परदशप्रभः ।
जुहुवे राक्षसश्रेष्ठो विधिवन्मन्त्रसत्तमैः ॥१८॥
सहाविर्लाज सत्कारैर्माल्यगन्ध पुरस्कृतैः ।
जुहुवे पावकं तत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥१९॥
शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकाः ।
लोहिता निचवासांसिस्त्रुवं कार्ष्णायसंतथा ॥२०॥

अर्थ—इस स्थान का नाम निकुम्भिला था, अग्नि तुल्य तेजस्वी इन्द्रजीत यहाँ पर विधिपूर्वक अग्नि में होम करने लगा ॥१८॥ उस प्रतापशाली राक्षसों में श्रेष्ठ इन्द्रजीत ने प्रथम अग्नि में माला और सुगन्धित द्रव्य चढ़ाकर उसके बाद खीर एवं अक्षत से उसका संस्कार पूरा करके हवन कर्म को आरम्भ किया ॥१९॥ उस हवन कुण्ड के चारों ओर जहाँ शरपत्र बिछाना चाहिये वहाँ उसने सब शस्त्र बिछाये व बहेड़े की लकड़ी को ईंधन बनाया, समस्त लाल ही वस्त्र धारण किये और लोहे का श्रुवा बनाया, मारण में यही पदार्थ काम आते हैं ॥२०॥

विभीषण सेना सहित लक्ष्मण को साथ लेकर मेघनाद का यज्ञ विध्वंस करने गये हैं। वह स्थान सेना से घिरा हुआ है विभीषण जी लक्ष्मण से कहते हैं।

त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैस्त्र किरन्परान् ।
अभिद्रवाशुयाद्वै नैतत्कर्मसमाप्यते ॥४॥

—वाल्मीकि रा० युद्ध का० सर्ग ८६

अर्थ—जब तक यह अभिचारिक होम पूरा नहीं होता, तब तक इन्द्र वज्र सदृश बाणों से आप राक्षसों की सेना को पीड़ा देते रहिये।

ऐसा ही किया उपरान्त—

स्वमनीकविषण्णंतु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् ।
उदतिष्ठत दुर्धर्षः सकर्मण्यननुष्ठिते ॥१४॥

अर्थ—इस ओर अजेय रावण पुत्र अपनी सेना शत्रु के दलों से मूर्छित देख अपने यज्ञ को बिना पूरा किये ही उठ बैठा।

इस प्रकार उस यज्ञ के असफल हो जाने पर असुरों को वह शक्ति प्राप्त न हो सकी, जिससे वे राम-सेना को नष्ट करने और स्वयं अजेय बनने में समर्थ होते।

श्रीमद्भागवत में यज्ञ माहात्म्य

श्रीमद्भागवत् में यज्ञ की महत्ता का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है। अनेक ऐसे प्रसंगों का भागवत में वर्णन है जिनसे यज्ञ की महाशक्ति का पूरा परिचय मिलता है। सृष्टि का आरम्भ यज्ञ से ही हुआ, इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

जिज्ञासा के अनुसार उत्तर रूप में ब्रह्माजी विराट भगवान के स्वरूप का वर्णन करते हैं—

यदास्य नाभ्यां नलिनादहमासं महात्मनः ।
नाविदं यज्ञ संभारान्पुरुषा वयवाहते ॥
तेष यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ।
इदं च देवयजनं कालश्चो सोगुणान्वितः ॥
वस्तून्योषधयः स्नेहारसलोह मृदोजलम् ।
ऋचोयजूंषि सामानि चतुर्होत्रं च सत्तम ॥

—भागवत, स्क० २, अ० ६ श्लोक २२ २३ २४

अर्थ—जिस समय व्यापक ब्रह्म की नाभि से मैं उत्पन्न हुआ, तब पुरुष के अवयव को छोड़कर, यज्ञ की कुछ भी सामग्री नहीं देखी।

उनके यज्ञ से पशु, वनस्पति, कुशा और देवताओं के यज्ञ करने योग्य भूमि और जिसमें बहुत से गुण भरे हों ऐसे समय की रचना की। सब पात्रादि रचे। औषधि, घृतादिक, मधुरादिक, स्वर्णादिधातु, मृत्तिका, जल, ऋक, यजु, साम एवं अथर्ववेद, चार ब्राह्मण जिससे हवन किया जाय, ऐसे कर्मों की भी सृष्टि की।

गतयोमतयोश्चैव प्रायश्चितम् समर्पणम् ।
पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥२६॥

इति सम्भृतसंभारः पुरुषावयवैरहम् ।
तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥२७॥
ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ।
पितरो विबुधा दैत्याः मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥२६॥

अर्थ—विष्णु क्रमादि गति, देवताओं का ध्यानादि मति, प्रायश्चित्त उसे भगवदर्पण करना आदि पुरुष अवयवों से ही मैंने रचना की। पुरुष के अवयवों की ऐसी सब सामग्री से पूजनीय परमात्मा ने पुरुष का यज्ञ किया। उसके पीछे अपने-अपने समय में सभी मनुष्य, ऋषि, पितर, देवगण तथा दैत्यादिकों ने भी यज्ञ के द्वारा यज्ञेश्वर और यज्ञरूप भगवान का पूजन किया राजा दक्ष ने अपने यज्ञ का विध्वंस होने तथा सुपुत्री सती के निधन के उपरान्त बहुत दुःख माना और शिवजी से क्षमा माँगने के पश्चात् अपनी भूल के प्रायश्चित्त रूप में ही विशद्-यज्ञ को पूरा किया। उसका वर्णन भागवत चतुर्थ स्कन्द के सातवें अध्याय में इस प्रकार है—

क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ।
कर्म सन्तानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥
वैष्णवं यज्ञ संतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमः ।
पुरोडाशं निरवपन् वीरसंसर्ग शुद्धये ॥
अध्वर्युणात्त हविषा यजमानो विशाम्पते ।
धिया विशुद्धा दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥

—भागवत, स्कन्द ४, अ० ७ श्लोक १६, १७, १८

अर्थ—इस भाँति दक्ष ने अपना अपराध क्षमा कराया और ब्रह्माजी से सम्मति लेकर उपाध्याय, ऋत्विज, अग्नि सहित यज्ञ कर्म आदि का सुन्दरता सहित विस्तार किया। तीन कपाल का पुरोडाश, विष्णु के निमित्त, यज्ञ संपूर्ण करने के हेतु प्रथमादिक वीरों की शुद्धि के लिये, श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दिया। अध्वर्यु ने जब हवि हाथ में लेकर, यजमान सहित विशुद्ध बुद्धि पूर्वक हवन कर भगवान वासुदेव का ध्यान किया—उसी समय भगवान साक्षात् रूप से प्रकट हो गये।

ऋषभदेव जी भगवान के अवतार माने जाते हैं। उन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ है। भरत ने यज्ञों द्वारा ही इस देश को तपोभूमि बनाया था।

द्रव्य देश कालवय-श्रद्धर्त्विग्विधोद्देशोपचितैः ।
सर्वैरपि क्रतोभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१६॥
भगवत्तर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न
कश्चन पुरुषो वाञ्छत्य विद्यमान मिवात्मनो—
ऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते
भर्तयंनु सवन विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥१७॥

—भागवत पंचम स्कन्द अ० ४

अर्थ—भरत ने सब भाँति पूर्णविधि के साथ सौ-सौ बार अश्वमेध यज्ञ किये। उनके वे सब यज्ञ साधारण नहीं हुए। द्रव्य, देश, काल, यौवन श्रद्धा, ऋत्विज, अनेक देवताओं के अर्थ इत्यादिक द्वारा अतिशय बढ़-चढ़कर सम्पन्न हुए थे। उस समय किसी पुरुष को दूसरे पुरुष से अपने लिये आकाश पुष्पवत् कुछ भी प्रार्थना करने की इच्छा नहीं हुई और कोई दूसरे की वस्तु पर लोभ दृष्टि नहीं करता था। सब में स्नेह और शील का उद्रेक होता रहता था।

यज्ञों द्वारा देव-शक्तियों की तुष्टि-पुष्टि

सृष्टि-संचालन करने वाली ईश्वर की शक्तियों का नाम देवता है। यह अनेक शक्तियाँ अनेक देवताओं के नाम से कही जाती हैं। इनका समस्त संसार की विभिन्न समस्याओं के तथा मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की सुख-समृद्धि, उन्नति, अवनति, हानि-लाभ, रोग-शोक आदि से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन देव-शक्तियों की अनुकूलता प्राप्त करके मनुष्य बड़ी सरलता पूर्वक अपनी उन्नति का द्वार खोल सकता है और यदि ये देव प्रतिकूल हों तो मनुष्य का कठोर श्रम भी निष्फल चला जाता है। देव शक्तियों को अनुकूल बनाने के लिए जितने भी साधन आदि धार्मिक क्षेत्र में बिताये गये हैं इनमें यज्ञ

सर्वश्रेष्ठ है। यज्ञ से देवता प्रसन्न होते है और अभीष्ट परिणाम प्रदान करते है, इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते है—

प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे जगत् तुष्टं प्रीणिते भवेत् ॥३८॥

—मत्स्य पुराण, अ० २१६ श्लोक ३८

अर्थ—कमल नयन भगवान विष्णु यज्ञ से प्रसन्न होते हैं, उनके सन्तोष में जगत् सन्तुष्ट है, उनकी प्रसन्नता में जगत् प्रसन्न होता है।

यज्ञेनदेवा जीवन्ति यज्ञेन पितरस्तथा।
देवाधीन प्रजासर्वा यज्ञाधीनाश्चदेवताः ॥१॥
यज्ञोहि भगवान्विष्णुर्यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यज्ञार्थं पशव स्रष्टा देवास्त्वौषधयस्तथा ॥२॥
यज्ञार्थं पुरुषाः स्रष्टाः स्वयमेवस्य भुवां।
यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञ परो भवेत् ॥३॥
यज्ञाशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषः।
धनंयद्यज्ञशीलानांदेवस्व तद्विदुर्बुधाः ॥४॥
यज्ञेन सम्यक्पुरुषस्तु नाके सम्पूज्यमानस्त्रिदशर्महात्मा।
प्राप्नो तिसौख्यानि महानुभावास्तमात्प्रयत्नेन यजेत् यज्ञैः ॥७॥

अर्थ—यज्ञ से देवता जीते हैं तथा पितृ जीते हैं, देवताओं के आधीन सब प्रजा है और यज्ञ के आधीन सब देवता हैं। यज्ञ ही भगवान विष्णु हैं, जिन विष्णु भगवान में सब प्रतिष्ठित है। यज्ञ के लिए देवता तथा औषधियों की सृष्टि की गई है।

स्वयम्भू जी ने यज्ञ के लिए ही मनुष्यों की सृष्टि की और कहा—यज्ञ सबका कल्याणकारी है इसलिए यज्ञ में तत्पर रहो। यज्ञावशिष्ट का भोजन वाले सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। यज्ञशीलों को धन को पण्डितों ने देवस्व, दिव्य माना है।

यज्ञ के द्वारा महात्मा पुरुष स्वर्ग में जाकर देवताओं द्वारा अच्छी तरह पूजित होते है। हे महानुभाव ऋषियों! यज्ञकर्ता महात्मा पुरुष स्वर्ग में

जाकर अनेक सौख्यों को प्राप्त करते है, इसीलिये प्रयत्न पूर्वक यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन करें।

दैवेकर्मणियुक्तोहि बिभर्तीदं चराचरम् ॥७५॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ॥७६॥

—मनुस्मृति अ० ३

अर्थात्—जो देव होम-कर्म युक्त है, वह चराचर का पोषण करता है, क्योंकि अग्नि में डाली आहुति आदित्य को पहुंचती है और सूर्य से वृष्टि होती है और वृष्टि से अन्न, अन्न से प्रजा होती है। इसलिए जो यज्ञ करता है, वह सम्पूर्ण प्रजा का पालन करता है।"

यज्ञैराप्यायिता देवाः वृष्ट्युत्सर्गेणवैप्रजाः।
आप्याययन्तेधर्मज्ञयज्ञाः कल्याणहेतवः ॥८॥

—श्री विष्णुपुराण प्र० अंश अ० ६

अर्थ—हे धर्मराज! यज्ञ से तृप्त होकर देवगण जल बरसाकर प्रजा को तृप्त करते हैं। यज्ञ सर्वथा कल्याण का हेतु है।

यो यज्ञैरिज्यते देवो वासुदेवः सनातनः।
स सर्वं दैवत तनुः पूज्यते परमेश्वरः ॥

—कूर्मपुराण पूर्वार्ध अ० २० श्लोक ४०

भावार्थ—जो यज्ञों में सनातन वासुदेव का यजन करते हैं, वह सब देवों के शरीर रूप परमेश्वर का पूजन करते है, अर्थात् सनातन वासुदेव का यज्ञों में यजन करने से सर्व देवताओं का यजन हो जाता है।

तस्मादीश प्रसादार्थं यूयं गत्वा भुवद्विजाः।
दीर्घसत्रं समाकुर्ध्वं यूयं वर्षं सहस्रकम् ॥१॥

—शिवपुराण वि० स० ३ अ० ४

अर्थ— (यज्ञ ही शिव को प्रसन्न करने का श्रेष्ठ साधन है) इसलिये हे ऋषिगणों! तुम सभी पृथ्वी पर जाकर एक सहस्र वर्ष तक दीर्घकालीन-विशाल यज्ञ करो।

ये विष्णुभक्ता: निष्कामा: यजन्ति परमेश्वरम् ।
त्रिसप्तकुला: सयुक्तास्ते यांति हरिमन्दिरम् ॥

—बृहद नारदपुराण अ० ३६ श्लोक ६१

"जो निष्काम भाव से यज्ञ द्वारा परमात्मा का पूजन करता है वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों को हरि-मन्दिर पहुँचाता है ।"

युधिष्ठिर ने शान्ति, पुष्टि को बढ़ाने वाले तथा सब कामों को सिद्ध करने वाले कृत्य को श्रीकृष्ण भगवान से पूछा ।

श्रीकृष्णजी बोले—

श्रीकाम: शान्तिकामोवाग्रह यज्ञं समारभेत् ।
इष्टायायु पुष्टिकामों वा तथैवाभिचरन्पुन: ॥
ग्रहयज्ञस्त्रिधाप्रोक्त: पुराण श्रुतिकोविदै: ।
प्रथमोऽयुत होम: स्याल्लक्षहोमस्तत: परम् ॥
तृतीय:कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रद: ।
अयुतेनाहुदीनां च नवग्रह मख स्मृत: ॥
होम समारभेत्सपि यव व्रीहि तिलादिना ।
अर्क पलाशखदिरौह्यपामार्गोऽथ पिप्पल: ॥
उदुम्बर शमीदूर्वा कुशाश्च समधि: क्रमात् ।
एकैकस्य चाष्टशतमष्टाविंशति वा पुन: ॥
दक्षिणाभि प्रयत्ने बहून्वा बहु वित्तवान् ।
लक्षहोमस्तु कर्त्तव्यो यदिवित्तं गृहे-गृहे ॥
यत: सर्वानवाप्नोति कुर्वन्कामान्विधानत: ।
पूज्येतशिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गण: ॥
यावत्कल्प शतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात् ।
सकामोयस्त्विमं कुर्याल्लक्ष होमं यथाविधि: ॥
स तं काममवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते ।
पुत्रार्थी लभते पुत्र धनार्थी लभते धनम् ॥

भार्यार्थी शोभनांभार्यां कुमारी च शुभपतिम् ।
भ्रष्टराज्यस्तथाराज्यं श्रीकाम श्रियमाप्नुयात् ॥
य यं कामयेतकाम तं तं प्राप्नोनि पुष्कलम ।
निष्काम: कुरुतेयस्तु पर ब्रह्म संगच्छति ॥

—अग्नि पुराण

अर्थ—लक्ष्मी की इच्छा करने वाला अथवा शान्ति चाहने वाला नवग्रह यज्ञ करे । उसी प्रकार इष्टि आयु की पुष्टि चाहने वाले को भी ग्रह-यज्ञ करना चाहिए । ग्रह-यज्ञ तीन प्रकार का कहा गया है, पुराणवेत्ता, श्रुतिवेताओं के द्वारा ।

"पहला अयुतहोम दूसरा लक्ष होम तीसरा कोटि होम सम्पूर्ण कामनाओं के फल को देने वाले हैं । अयुत (दस हजार) आहुतियों के देने से वह नव-ग्रह यज्ञ कहा गया है ।"

"अर्क पलाश, खदिर, अपामार्ग, पिप्पल, उदुम्बर, शमी (छोंकर), दूब और कुशा इन समिधाओं के क्रम से घी, जौ, व्रिहितिलादि से एक-एक ग्रह को एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियों से हवन करें ।"

"बहुत धन वालों को प्रयत्नपूर्वक बहुत से लक्ष-होम करना चाहिये । यदि घर में धन हो तो विधि-विधान में लक्ष-होम को करने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होती है और आठ सौ कल्प तक वसु-आदित्य, मरुद्गणों आदि के द्वारा शिव-लोक में पूजित होता है, इसके बाद मोक्ष पद को प्राप्त करता है ।"

"जो मनुष्य सकाम भावना से इस लक्ष-होम को विधि-विधान से करता है, उसको इच्छित काम की प्राप्ति होती है और अन्त समय परमपद को प्राप्त करता है ।"

"पुत्रार्थी पुत्र को प्राप्त करते हैं, धनार्थी धन को प्राप्त करते हैं, भार्यार्थी सुन्दर स्त्री को प्राप्त करते हैं और कन्या शुभपति को प्राप्त करती है । राज्य से च्युत राजा राज्य को प्राप्त करता है—लक्ष्मी की कामना वाला लक्ष्मी को प्राप्त करता है ।"

"जो पुरुष जिस-जिस कामना की इच्छा करता है, उसी-उसी कामना को अधिक मात्रा में प्राप्त करता है, जो निष्काम भाव से यज्ञ-हवन करता है वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।"

यज्ञ से सुसन्तति की प्राप्ति

यज्ञों का आश्चर्यजनक प्रभाव जहाँ मनुष्य की आत्मा, बुद्धि एवं निरोगता पर पड़ता है वहाँ प्रजनन प्रणाली की भी शुद्धि होती है। याज्ञिकों को सुसन्तति प्राप्त होती है। रज वीर्य में जो दोष होते हैं, उनका निवारण होता है। साधारण औषधियों का सेवन केवल शरीर के ऊपरी भागों तक ही प्रभाव दिखाता है पर यज्ञ द्वारा सूक्ष्म की हुई औषधियाँ याज्ञिक स्त्री पुरुषों के श्वांस तथा रोम कूपों द्वारा शरीर के सूक्ष्मतम भागों तक पहुँच जाती हैं और उन्हें शुद्ध करती हैं। गर्भाशय एवं वीर्य-कोषों की शुद्धि में यज्ञ विशेष रूप से सहायक होता है।

जिनके सन्तति नहीं होती, गर्भपात हो जाते हैं, कन्या ही होती है, बालक अल्पजीवी होकर मर जाते हैं, वे यज्ञ भगवान् की उपासना करें तो उन्हें अभीष्ट सन्तान सुख मिल सकता है। कई बार कठोर प्रारब्ध सन्तान न होने का प्रधान कारण होता है, वैसी दशा में भी यज्ञ द्वारा उन पूर्व सञ्चित प्रारब्धों का शमन हो सकता है।

गर्भवती स्त्री को पेट में बच्चा आने से लेकर जन्म होने तक चार बार यज्ञ संस्कारित करने का विधान है; ताकि उदरस्थ बालक के गुण, कर्म, स्वभाव, स्वास्थ्य, रङ्गरूप आदि उत्तम हों। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातक यह चार संस्कार यज्ञ द्वारा होते हैं जिनके कारण बालक पर उतनी छाप पड़ती है, जितनी जीवन भर की शिक्षा-दीक्षा में नहीं पड़ती। ऋषियों ने षोडश संस्कार-पद्धति का आविष्कार इसी दृष्टि से किया था। उस प्रणाली को जब इस देश में अपनाया जाता था, तब घर-घर सुसंस्कृत बालक पैदा होता था। आज उस प्रणाली का परित्याग करने का ही परिणाम है कि सर्वत्र अवज्ञाकारी, कुसंस्कारी संतान उत्पन्न होकर माता-पिता तथा परिवार के सब लोगों को दुःख देती है।

सन्तान उत्पादन के कार्य में यज्ञ का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। जिनके सन्तान होती है, वे अपने भावी बालकों को यज्ञ भगवान् के अनुग्रह से सुसंस्कारी, स्वस्थ, बुद्धिमान, सुन्दर और कुल की कीर्ति बढ़ाने वाले बना सकते हैं। जिन्हें सन्तान नहीं होती है, वे उन बाधाओं को हटा सकते हैं जिनके कारण वे सन्तान-सुख से वञ्चित हैं। प्राचीन काल में अनेक सन्तान हीनों को सन्तान प्राप्त होने के उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी अपने यज्ञ करने वाले ब्राह्मण से कहते हैं, जिनमें से कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

धर्मार्थ सहितं युक्तं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ।
ममता तप्यमानस्य पुत्रार्थं नास्ति वैसुखम् ।।८।।

—वाल्मीकि रामायण, बा०, अ० द्वादश सर्ग

अर्थ—हे विप्रगणों ! मैं पुत्र प्राप्ति की कामना से बहुत ही सन्तप्त और व्याकुल हूँ। मुझे कहीं भी जरा भी सुख नहीं मिल रहा है। मैंने पुत्र की प्राप्ति के लिये यज्ञ करने का विचार किया है।

ऋषिपुत्र प्रभावेण कामान्प्राप्स्यामि चाप्यहम् ।।१०।।
तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेव समाप्यते ।
तथा विधान क्रियतां समर्थाः करणेष्विह ।।१६।।

अर्थ—ऋषिपुत्र शृङ्गी ऋषि के यज्ञ-क्रिया की निपुणता के प्रभाव से अवश्य ही हमारी पुत्र कामना पूरी होगी। अतः आप विधिपूर्वक यज्ञ करने-कराने में समर्थ द्विज गण सावधान होकर यज्ञ करावें, जिससे यह सांगोपांग विधिपूर्वक पूर्ण हो जाय।

राजा चित्रकेतु के पुत्र होने का वर्णन "भागवत पुराण" में इस प्रकार कहा गया है।

इत्यर्थित स भगवान कृपालु ब्राह्मणः सुतः ।।
श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारम यजद्विजम ।।२७।।

ज्येष्ठा: च या राज्ञो महिषीणां च भारत ।
नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद्द्विज ॥२८॥
सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ।
गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्मज ॥३०॥
अथकाल उपावृत्ते कुमार: समजायत ।
जनयञ्छूर सेनानां शृण्वतां परमांमुदम् ॥३२॥
हृष्टो राजा कुमारस्य स्नात: शुचिरलंकृत: ।
वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रै: कारयामासजातकम् ॥३३॥

—भागवत पुराण, अ० स्कन्द १४ अ०

अर्थ—जब राजा चित्रकेतु ने अङ्गिरा ऋषि की प्रार्थना की, तो ब्रह्मा के पुत्र परम दयालु अङ्गिरा ऋषि ने उसी समय त्वाष्ट्र चरु लेकर उसे विधि पूर्वक त्वाष्टा की पूजा करवाई और यज्ञ किया ॥२७॥

हे भारत ! परीक्षित यज्ञ समाप्त होने पर, राजा की अनेक रानियों में जो सबसे श्रेष्ठ और बड़ी कृतद्युति थी ब्रह्मर्षि अङ्गिरा ने उसे यज्ञ का शेष अन्न (यज्ञोच्छिष्ट) दिया ॥२८॥

यज्ञ शेष (चरु) भोजन करके चित्रकेतु की रानी कृतद्युति ने—जिस भाँति कृत्तिका ने अग्नि की आत्मा को धारण किया था, उस भाँति धारण किया ॥३०॥

इसके पीछे जब गर्भ मास पूर्ण हो गये तब राजकुमार उत्पन्न हुआ। पुत्र का जन्म सुनकर शूरसेन देश निवासियों को अपार आनन्द प्राप्त हुआ ॥३२॥

राजा चित्रकेतु पुत्र का जन्म श्रवण कर, आनन्द-सागर में निमग्न हो गया। शान्त-चित्त से स्नान ध्यान कर, पवित्र हो, स्वच्छ वस्त्र धारण किया और विधिपूर्वक ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त कर अपने पुत्र का जात कर्म संस्कार सविधि सम्पन्न किया ॥३३॥

यज्ञ का महान विज्ञान

जिस दिन से ऋग्वेद की प्रथम ऋचा की कृपा से मनुष्य ने अग्नि प्रज्वलित करना सीख लिया, उसी दिन से वह संसार का सबसे प्रभावशाली

सत्व बन गया। उसी दिन से बड़े से बड़े हिंसक जीव भी इससे भयभीत होने लगे। जिसके हाथ में प्रकाश और ताप का स्वेच्छा नियन्त्रण आ गया, उसकी शक्ति का सामना अन्य प्राणी कर भी कैसे सकते थे ? सङ्गतिकरण से उत्पन्न हुए अग्नि को सङ्गतिकरण में ही लगा दिया तब-तब उससे सहस्त्र गुणित संवृद्धि प्राप्त होने लगी। जिसे हम सङ्गतिकरण कह रहे हैं, इसी का वैदिक नाम 'यज्ञ' है। अत: यज्ञ से उत्पन्न हुआ अग्नि यज्ञ के ही कार्यों में नियोजित किया गया। यज्ञाग्नि ने थोड़े ही समय में प्रकृति की मुख्य शक्तियों को जिनको वैदिक भाषा में हम देवता कहते हैं अपने वश में करके यजमान को सौंप दिया। यजमान अग्नि के माध्यम से समस्त देवताओं की पूजा करके उनको वश में कर सकने में समर्थ हो गया। अग्नि की कृपा से भौतिक विज्ञान का मार्ग खुल गया है, इससे कोई आधुनिक विज्ञानवेत्ता भी इनकार नहीं कर सकता है।

इस प्रभावशाली अग्नि को प्रारम्भ में कृत्रिम रूप से ऋग्वेद की प्रथम ऋचा की प्रेरणा से ही उत्पन्न किया गया था और उसे उत्पन्न करने में जो प्रयत्न किया गया था उसी का नाम यज्ञ है। ऋग्वेद की ऋचा में अग्नि की स्तुति में पाँच विशेषण दिये हैं, वे पाँच यज्ञ के ही विभिन्न व्यक्तियों से सम्बन्धित हैं। आप उनकी संज्ञा मात्र से ही उनको पहचान सकते हैं। वे इस प्रकार हैं—१–पुरोहित, २–यज्ञ का देव, ३–ऋत्विज, ४–होता, ५–रत्न-धातम इन पाँचों विशेषणों से पता चलता है कि अग्नि के प्रथम उत्पादकों के सामने अग्नि उत्पन्न करने का लक्ष्य यज्ञ करना ही था और यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण संवृद्धियों को पाना था हमारे आदि पूर्वजों ने यज्ञ के द्वारा ही अनेक विज्ञापनों का आविष्कार किया और उससे मानव समाज तथा सभ्यता का विकास हुआ। सामूहिक रूप से विश्वात्मा की तृप्ति के लिये प्रयत्न करना अर्थात् विश्व कल्याण के स्तर पर संवृद्धि के लिये प्रयत्न करने का ही नाम है यज्ञ और अग्नि ही ऐसे यज्ञ का देव है।

नवीन विधान में भी पृथ्वियों, लोक-लोकान्तरों, ग्रह-नक्षत्रों आदि की उत्पत्ति से तेजोमय वाष्पपुञ्जों रूपी नीहारिकाओं से मानी गई है। ग्रन्थों के

तीन रूप वाष्प, द्रव तथा ठोस होते हैं। आदिम काल में सभी ठोस तथा द्रव वाष्प रूप में थे। सेर भर ठोस का लौहपिण्ड यदि विद्युत की भट्टी में डालकर गलाया जाय तो पहिले पानी जैसा पतला होकर फिर वाष्प बनकर उड़ जाता है तथा पुनः प्रक्रिया द्वारा ठोस लौह-पिण्ड में परिवर्तित किया जा सकता है। पाश्चात्य जगत् पृथ्वी की उत्पत्ति ऐसे मानता है कि पूर्व में सूर्य से टूटकर अलग हुए तथा दहकते हुए द्रव का एक गोला था जो क्रमशः ठण्डा होकर ठोस हो गया। फिर इस पर धीरे-धीरे वनस्पति तथा जीव-जन्तुओं का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार पाश्चात्य दृष्टिकोण से भी सृष्टि-क्रम सूक्ष्म से स्थूल की ओर ही है।

यज्ञ ही सृष्टि की वृद्धि का सूक्ष्म कारण था जो वायु मण्डल में अनेक प्रकार की सिद्धि, समृद्धि सुख, सम्पत्ति ज्ञान, जिज्ञासा, संयम सदाचार आदि के प्राण रूप में विद्यमान था। यही यज्ञ रूपी सूक्ष्म प्राण, अग्नि में होकर जल व पृथ्वी तत्व का रूप धारण करके अभीष्ट फलों में बदल जाता है इसी प्रकार वह शुद्ध तथा उचित स्थूल द्रव्य जिनमें जल व पृथ्वी के अंश अधिक हैं, उनको अग्नि में पुनः डालकर वायु वाष्प या धुँए के रूप में परिवर्तित व विशद करके वायु-मण्डल में सुख-समृद्धि तथा नाना प्रकार के अभीष्टों के प्राण पुनः बनाये जा सकते हैं।

सृष्टि के आदि में सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राणियों की सृष्टि हुई जो अपना प्रत्येक सिद्धियों से सम्पन्न थे, प्रकट व लोप हो सकते थे, आकाशचारी थे तथा सङ्कल्प मात्र से लोक-लोकान्तरों में आ सकते थे। यह ऋषिगण थे, इनको श्रुति सिद्धि थी, इनको ब्रह्म-शब्दों द्वारा अनेक प्रकार यज्ञ की विधियाँ ज्ञात थीं। ऋषिसर्ग के पश्चात देव सर्ग, पितृसर्ग, मनुष्यसर्ग तथा अनेक अन्य सर्ग हुए जो ऋषियों के प्रति ब्रह्म द्वारा कथित यज्ञों का पालन करके अपना तथा लोक का कल्याण करते चले आये।

सृष्टि के आरम्भ में ऋषिसर्ग व देवसर्ग के प्राणी सिद्धि सम्पन्न होने के कारण केवल सङ्कल्प मात्र से अभीष्ट फलों की प्राप्ति कर लेते थे, अर्थात् सूक्ष्म सृष्टि होने के कारण यज्ञों की स्थूल प्रक्रिया न होकर केवल कल्प व

सङ्कल्पों द्वारा ही बरता जाता था अर्थात् उनको अग्नि में हवन द्वारा स्थूल द्रव्यों को वाष्प, वायु अथवा धुँए में परिवर्तित करके वायु मण्डल में अभीष्ट फलों के प्राण, कारण व बीज बनाने की आवश्यकता न थी। परन्तु सतयुग के अन्तिम तथा त्रेतायुग के प्रारम्भ में जबकि मनुष्यादि सर्गों का आविर्भाव तथा वृद्धि हो चुकी थी तथा साथ ही साथ मनुष्यों में इच्छा, आवश्यकता तथा रजोगुण की उत्तरोत्तर वृद्धि हो चली थी तो विविध सङ्कल्पों के साथ उचित तथा शुद्ध व अभीष्ट फल सिद्धिकारक स्थूल द्रव्यों को अग्नि में हवन कर धुँए के रूप में विशद बनाकर वायु मण्डल में अभीष्ट फलों के कारण रूप प्राण बनाकर प्राप्ति व वृद्धि करने लगे।

त्रेतायुग के विद्वान् व वैज्ञानिक ऋषियों ने इस विद्या में बड़ी उन्नति की। व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की कोई भी आवश्यकता हो उसके लिए तत्काल ही एक यज्ञ की व्यवस्था कर देते थे। सङ्कल्पों के साथ उचित द्रव्यों को अग्नि में हवन करके अभीष्ट फल की प्राप्ति करने लगे। यहाँ तक उन्नति हुई कि इन्हीं यज्ञों द्वारा विशिष्ट शक्ति सम्पन्न देवता, असुर, गन्धर्व, राक्षस आदि प्राणियों को प्रकट करना, रथ, विमान खीर, अनेक प्रकार की औषधियाँ, राजमहल, घोड़ा, वृक्ष, गौ, नदी आदि मनचाही वस्तुओं को सद्यः प्राप्त करने के अनेक उदाहरण हैं, जो पुराणों और उपनिषदों में वर्णित हैं। ऋषियों ने उन भिन्न-भिन्न द्रव्यों का पता लगाया, जिनको संकल्प के साथ अग्नि में हवन करने से भिन्न-भिन्न अभीष्टों की सिद्धि होती है। उन्होंने गौघृत को यज्ञ के लिये सर्वथा उपयुक्त पाया।

जितने भी हवनीय द्रव्य हैं उनमें गौघृत के हवन द्वारा बने हुए सुगन्धित वायु-मण्डल का आयतन सबसे अधिक है, यह प्रत्यक्ष देखा गया है। गौघृत के पश्चात् सुगन्धित आयतन बनाने का नम्बर शक्कर का है। कपूर, गुग्गुल, राल, देवदारु, चन्दन, अगर, तगर, नागरमोथा, पान सुपारी, नारियल खजूर, जटामाँसी, केशर, कस्तूरी, सुगन्ध वाली लौंग, इलायची, तेजपत्र, कपूर, कचरी, मखाना, छुआरा, किशमिश, अंगूर सेवादि फल, जौ, तिल, धान्य आदिकों में भी हवन द्वारा वायु-मण्डल में अधिकाधिक सुगन्धित आयतन

बनाने का गुण है, परन्तु गोघृत इन सबसे मुख्य है। गोघृत के योगवाही तथा विशद होने के कारण अन्य द्रव भी इसके संयोग से हवन द्वारा प्राण रूप होकर वायु मण्डल में विशद या बृहद् आयतन धारण कर लेते हैं।

यज्ञ एक महत्वपूर्ण विज्ञान है। जिन वृक्षों की समिधायें काम में ली जाती हैं, उनमें विशेष प्रकार के गुण होते हैं। किस प्रयोग के लिये किस प्रकार की हव्य वस्तुएँ होमी जाती हैं, इनका भी विज्ञान है। उन वस्तुओं के आपस में मिलने से एक विशेष गुण संयुक्त सम्मिश्रण तैयार होता है, जो जलने पर वायु मण्डल में एक विशिष्ट प्रभाव पैदा करता है। वेद मन्त्रों के उच्चारण की शक्ति से उस प्रभाव में और भी अधिक वृद्धि होती है। फलस्वरूप जो व्यक्ति सम्मिलित होते हैं, उन पर तथा निकटवर्ती वायु-मण्डल पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। सूक्ष्म प्रकृति के अन्तराल में जो नाना प्रकार की दिव्य शक्तियाँ काम करती हैं, उन्हें देवता कहते हैं। इन देवताओं को अनुकूल बनाना, उनको उपयोगी दिशा में प्रयुक्त करना, उनसे सम्बन्ध स्थापित करना यही देवताओं को प्रसन्न करना है। यह प्रयोजन यज्ञ द्वारा आसानी से पूरा हो जाता है।

संसार में कभी किसी वस्तु का नाश नहीं होता, केवल रूपान्तर होता रहता है। जो वस्तु हवन में होमी जाती है, वे तथा वेद मन्त्रों की शक्ति के साथ जो सद्भावनायें यज्ञ द्वारा उत्पन्न की जाती हैं, वे दोनों मिलकर आकाश में छा जाती हैं। उनका परिणाम समस्त संसार के ही लिये अनेक प्रकार से कल्याणकारक परिणाम उत्पन्न करने वाला होता है। इस प्रकार यज्ञ इस संसार की सेवा का, विश्व में सुख-शांति उत्पन्न करने का उत्तम माध्यम एवं पुण्य परमार्थ है। यज्ञ से याज्ञिक की आत्म-शुद्धि होती है, उसके पाप-ताप नष्ट होते हैं तथा शान्ति एवं सद्गति उपलब्ध होती है। सच्चे हृदय से यज्ञ करने वाले मनुष्यों का लोक और परलोक सुधरता है यदि उनका पुण्य पर्याप्त हुआ, तब तो उन्हें स्वर्ग या मुक्ति की प्राप्ति होती है। अन्यथा यदि दूसरा जन्म भी लेना पड़ा तो सुखी, श्रीमान् साधन-सम्पन्न उच्च परिवार में जन्म होता है, ताकि आगे के लिये वह सुविधा के साथ सत्कर्म करता हुआ लक्ष्य को सफलता पूर्वक प्राप्त कर सके।

यज्ञ का अर्थ दान, एकता उपासना है। यज्ञ का वेदोक्त आयोजन, शक्तिशाली मन्त्रों का विधिवत् उच्चारण, विधिपूर्वक बनाये हुए कुण्ड शास्त्रोक्त समिधायें तथा सामग्रियाँ जब ठीक विधानपूर्वक हवन की जाती हैं, उनका दिव्य प्रभाव विस्तृत आकाश-मण्डल में फैल जाता है। उसके प्रभाव से फलस्वरूप प्रजा के अन्तःकरण में प्रेम, एकता, सहयोग, सद्भाव, उदारता, ईमानदारी, संयम, सदाचार, आस्तिकता आदि सद्भावों एवं सद्विचारों का स्वमेव आविर्भाव होने लगता है। यज्ञों से आच्छादित दिव्य आध्यात्मिक वातावरण के स्थान में सन्तान पैदा होती हैं, वे स्वस्थ, सद्गुणी एवं उच्च विचार-धाराओं से परिपूर्ण होती हैं। पूर्वकाल में पुत्र प्राप्ति के लिए ही पुत्रेष्टि यज्ञ कराते हों सो बात नहीं। जिनके बराबर सन्तान होती थी, वे भी सद्गुणी एवं प्रतिभावान् सन्तान प्राप्त करने के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ कराते थे। गर्भाधान, सीमन्त, पुंसवन, जातकर्म नामकरण आदि संस्कार बालक के जन्म लेते-लेते अबोध अवस्था में ही हो जाते थे। इनमें से प्रत्येक में हवन होता था ताकि बालक के मन पर दिव्य प्रभाव पड़े और वह बड़ा होने पर पुरुष-सिंह एवम् महापुरुष बने। प्राचीन काल का इतिहास साक्षी है कि जिन दिनों इस देश में यज्ञ प्रतिष्ठा थी, उन दिनों यहाँ महापुरुषों की कमी नहीं थी। आज यज्ञ का तिरस्कार करके अनेक दुर्गुणों, रोगों, कुसंस्कारों और बुरी आदतों । ग्रसित बालकों से ही हमारे घर भरे हुए हैं।

यज्ञ से अदृश्य आकाश में जो आध्यात्मिक विद्युत तरंगें फैलती हैं, वे लोगों के मनों से द्वेष, पाप, अनीति, वासना, स्वार्थपरता, कुटिलता आदि बुराइयों को हटाती है। फलस्वरूप, उससे अनेक समस्यायें हल होती हैं। अनेक उलझनें, गुत्थियाँ, पेचीदगियाँ, चिन्तायें, भय, आशङ्कायें तथा बुरी सम्भावनायें समूल नष्ट हो जाती हैं। राजा, धनी, सम्पन्न लोग, ऋषि मुनि, बड़े-बड़े यज्ञ कराते थे, जिससे दूर-दूर का वातावरण निर्मल होता था और देश-व्यापी, विश्व-व्यापी बुराइयाँ तथा उलझनें सुलझती थीं।

बड़े रूप में यज्ञ करने की जिनकी सामर्थ्य है उन्हें वैसे आयोजन करने चाहिए। अग्नि का मुख ईश्वर का मुख है। उसमें जो कुछ खिलाया जाता है,

यह सच्चे अर्थों में ब्रह्मभोज है। ब्रह्म अर्थात् परमात्मा, भोज अर्थात् भोजन परमात्मा को भोजन कराना यज्ञ के मुख में आहुति छोड़ना ही है। भगवान हम सबको खिलाता है, हमारा भी कर्त्तव्य है कि अपने उपकारी के प्रति पूजा करने में कंजूसी न करें। जिनकी आर्थिक स्थिति वैसी नहीं है वे कई व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा सहयोग करके सामूहिक यज्ञ की व्यवस्था कर सकते हैं। जहाँ ऐसा सुयोग न हो, वहाँ यदा-कदा छोटे-छोटे हवन किये जा सकते हैं अथवा जहाँ नियमित यज्ञ होते हैं, वहाँ अपनी ओर से कुछ आहुतियों का हवन कराया जा सकता है। कई अन्य व्यक्ति यज्ञ कर रहे हों तो उसमें समय, सहयोग एवम् सहायता देकर उसे सफल बनाने का प्रयत्न करना भी यज्ञ में भागीदार होना ही है।

हमें यह निश्चय रूप से समझ लेना चाहिये कि यज्ञ में जो कुछ भी धन सामग्री, श्रम लगाया जाता है वह कभी निरर्थक नहीं जाता। एक प्रकार से वह देवताओं के बैंक में जमा हो जाता है और उचित अवसर पर सन्तोष-जनक ब्याज समेत वापिस मिल जाता है। विधि पूर्वक शास्त्रीय पद्धति और विशिष्ट उपचारों तथा विधानों के साथ किये गये हवन तो और भी महत्वपूर्ण होते हैं। वे एक प्रकार के दिव्य अस्त्र बन जाते हैं। पूर्वकाल में मनोवांछित वर्षा होती थी, योद्धा लोग युद्ध में विजय भी प्राप्त करते थे और योगी आत्म साक्षात्कार करते थे यज्ञ को वेदों में 'कामधुक' कहा है जिसका आशय यही है कि वह मनुष्यों के समस्त अभावों को दूर करने वाला और बाधाओं को दूर करता है।

नित्य का अग्निहोत्र बहुत सरल है। उसमें कुछ इतना भारी खर्च नहीं होता कि मध्य वर्ग का मनुष्य उस भार को उठा न सके। जो लोग नित्य हवन नहीं कर सकते, वे सप्ताह में एक बार रविवार को अथवा अमावस्या, पूर्णमासी को अथवा महीने में एक बार पूर्णमासी को थोड़ा या बहुत हवन करने का प्रयत्न करें। विधि-विधान भी इन साधारण हवनों का कोई कठिन नहीं है। "गायत्री यज्ञ विधान" पुस्तक में उसकी सरल विधियाँ बताई जा चुकी हैं उनके आधार पर बिना पण्डित पुरोहित की सहायता से कोई द्विज आसानी से वह करा सकता है। जहाँ भी विधान न मालूम हो, वहाँ

केवल शुद्ध घृत की आहुतियाँ गायत्री मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' शब्द लगाते हुए दी जा सकती हैं। किसी न किसी रूप में यज्ञ परम्परा को जारी रखा जाय तो वह भारतीय संस्कृति की बड़ी भारी सेवा है।

साधारण होम भी बहुत उपयोगी होता है, उससे घर की वायु-शुद्धि रोग-निवृत्ति, अनिष्टों से आत्म-रक्षा होती है। फिर विशेष आयोजन के साथ विधि-विधान पूर्वक किये गये यज्ञ तो असाधारण फल उत्पन्न करते हैं। यज्ञ एक विद्या है। पाँचों तत्वों के होम में एक वैज्ञानिक सम्मिश्रण होता है, जिससे एक प्रचण्ड संघर्ष शक्ति का आविर्भाव होता है। यज्ञ की इस प्रचण्ड शक्ति को "द्वि मूर्धा, द्वि नासिका, सप्तहस्त, द्वि मुख, सप्त जिह्वा, उत्तर मुख कोटि द्वादश मूर्ध्वा द्वि पंच सप्तकला युतम्" आदि की विशेषण युक्त कहा गया है इस रहस्यपूर्ण संकेत में यह बताया गया है कि यज्ञाग्नि की मूर्धा भौतिक और आध्यात्मिक दोनों हैं। यह दोनों सफल बनाये जा सकते हैं। स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति यज्ञ की नासिका है, उन पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। सातों प्रकार की सम्पदायें यज्ञाग्नि के हाथ हैं वाममार्ग और दक्षिणमार्ग ये दो मुख हैं सातों लोक जिह्वाएँ हैं। इन सब लोकों में जो कुछ भी विशेषतायें हैं वे यज्ञाग्नि के मुख में मौजूद हैं। उत्तर ध्रुव का चुम्बकत्व केन्द्र अग्निमुख है। ५२ कलायें यज्ञ की ऐसी हैं, जिनमें से कुछ को प्राप्त करके ही रावण इतना शक्तिशाली हो गया था। यदि वह सभी कलायें उपलब्ध हो जायें तो मनुष्य साक्षात् अग्नि रूप हो सकता है और विश्व के सभी पदार्थ उसके कर-तलगत हो सकते हैं। यज्ञ की महिमा अनन्त है और उसका आयोजन भी फलदायक होता है। हम श्रीमद्भागवत पुराणों में नगर वर्णन में द्वारका, मथुरा अयोध्या, काशी आदि नगरों के विषय में ऐसा पढ़ते हैं कि इन नगरों पर सदा यज्ञ का धुँआ मडराया करता था। गलियाँ अगरु कस्तूरी, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध से सुवासित रहती थीं। शुद्ध, सुगन्धमय, प्रसन्नता व प्रीतिदायक वातावरण बना रहता था जो समाधिवर्धक, मन को एकाग्र व भावमय बनाने में सहायक होता था, जन समुदाय की बुद्धि, स्मृति, बल, प्रसन्नता आदि का कारण होता था। दैहिक, दैविक तथा भौतिक परमाणुओं का शमन होता था।

यज्ञ में सावधानी की आवश्यकता

यज्ञ एक प्रकार की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जो वैज्ञानिक प्रक्रिया जितनी शक्तिशाली होती है, उसमें उतनी ही सावधानी बरतनी पड़ती है। बढ़िया बारूद बनाने के कारखाने में यदि रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण में लापरवाही होने लगे तो वहाँ रद्दी बारूद बनेगी और जब उसका बन्दूक में उपयोग किया जायेगा तो लक्ष-वेध में सफलता न मिलेगी। इसलिए उस बारूद के कारखाने के व्यवस्थापक पूरी सावधानी से यह देख भाल करते रहते हैं कि कारखाने का हर कार्य पूर्ण रूपेण नियमपूर्वक हो। यदि बारूद पीसने वाले या कारतूस भरने वाले कर्मचारी ढील-पोल की नीति से काम करें, लापरवाही बरतें बीड़ी पीकर चिनगारी बखेर दें तो सारे कारखाने का ही स्वाहा कर सकते हैं। घटिया कार्यों में लापरवाही चल सकती है पर कार्य जिम्मेदारी के हैं उनमें पूर्ण जागरूकता एवं पूर्ण व्यवस्था की ही आवश्यकता रहती है। यज्ञ में ऐसी ही विधि व्यवस्था बरती जानी चाहिये।

ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्गाता, ऋत्विक, आचार्य आदि कार्यकर्त्ताओं की जिम्मेदारियाँ पहले से ही बाँट दी गई हैं कि वे अपने विभाग की सुव्यवस्था रखें व करवायें। यों हवन का काम मामूली सा है। एक सुपरवाइजर बड़े-बड़े मिलों का इन्तजाम कर सकता है तो छोटे से हवन के लिये भी एक मैनेजर काफी होना चाहिये। पर यज्ञ बहुत गम्भीर बात है उसकी प्रत्येक परिपूर्ण गतिविधि मनोयोग के साथ ध्यान रखना सामान्य मस्तिष्क के एक आदमी का काम नहीं है इसलिए यज्ञ के प्रत्येक कार्य में पूरी सावधानी रखने के लिए कार्यकर्त्ता विभागाध्यक्ष नियुक्त करते हैं। आचार्यादिवरण की यही प्रक्रिया है। यह लोग पूरे जिम्मेदार पूर्ण श्रद्धालु और अपनी जिम्मेदारी को निबाहने के लिये भरपूर परिश्रम करने वाले होने चाहिये। विशेष अवसरों पर यज्ञों की तैयारी का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिये। गायत्री यज्ञ विधान दो भाग में इसका विस्तृत विधि विधान दिया गया है।

मुद्रक—सरस्वती प्रेस, मथुरा।

अध्यात्म का वैज्ञानिक प्रतिपादन साहित्य

गायत्री महाविद्या के अमूल्य ग्रन्थरत्न

(१)	गायत्री महाविज्ञान सजिल्द [प्रथम भाग]	७-५०
(२)	गायत्री महाविज्ञान सजिल्द [द्वितीय भाग]	७-५०
(३)	गायत्री महाविज्ञान सजिल्द [तृतीय भाग]	७-५०
(४)	गायत्री यज्ञ विधान [प्रथम भाग]	३-००
(५)	सामूहिक यज्ञ विधान [द्वितीय भाग]	३-००
(६)	गायत्री चित्रावली	४-००
(७)	गायत्री मन्त्रार्थ	३-५०
(८)	गायत्री का स्वरूप और रहस्य	-८०
(९)	गायत्री की गुप्त शक्ति	-८०
(१०)	सर्व सुलभ गायत्री साधना	-८०
(११)	गायत्री का शक्ति स्रोत—सविता देवता	-८०
(१२)	गायत्री और उसकी प्राण-प्रक्रिया	-८०
(१३)	गायत्री पञ्चमुखी और एकमुखी	-८०
(१४)	गायत्री की पञ्चविधि दैनिक साधना	-८०
(१५)	गायत्री की विशेष साधनाएं	-८०
(१६)	गायत्री मन्त्र की विलक्षण शक्ति	-८०
(१७)	गायत्री की असंख्य शक्तियाँ	-८०
(१८)	गायत्री की सिद्धियाँ	-८०
(१९)	गायत्री शक्ति का नारी स्वरूप	-८०
(२०)	स्त्रियों का गायत्री अधिकार	-८०
(२१)	गायत्री और यज्ञोपवीत	-८०
(२२)	गायत्री और यज्ञ का सम्बन्ध	-८०
(२३)	संक्षिप्त गायत्री हवन विधि	-६०
(२४)	गायत्री की दैनिक साधना	-६०
(२५)	गायत्री चालीसा	-१०
(२६)	युग-निर्माण सत्संकल्प	-१५

अखण्ड ज्योति प्रकाशन, मथुरा